॥ ओ३म् ॥

गुरुकुल-पत्रिका

सम्पादक : रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एवं उपकुलपति

सह-सम्पादक : डा० सत्यव्रत राजेश
प्रवक्ता वेद विभाग, संस्कृत

प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री
प्रवक्ता संस्कृत विभाग

प्रकाशक : डा० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)

विषय-सूची

—०—

ओ३म्

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका]

भाद्रपद २०३९ — वर्ष : ३४, अंक : ५
अगस्त १९८२ — पूर्णांक : ३३५

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ साम० १८७५ ॥

अन्वयः-वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति दधातु । विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति [दधातु] । अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति [दधातु] । बृहस्पतिः नः स्वस्ति [दधातु] ।

सं० अन्वयार्थः—वृद्धश्रवा इन्द्र हमारे लिये कल्याण धारण करे । विश्ववेदा पूषा हमारे लिए कल्याण धारण करे । अरिष्टनेमि तार्क्ष्य हमारे लिए कल्याण धारण करे । बृहस्पति हमारे लिए कल्याण धारण करे ।

अन्वयार्थः—([1]वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति दधातु) बढ़े हुए यश वाला, परमैश्वर्यवान् परमेश्वर हमारा कल्याण करे (विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति दधातु) सर्वज्ञ, सर्वविध पदार्थों का स्वामी सबका पालन पोषण करने वाला परमेश्वर हमारा कल्याण करे । ([2]अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति दधातु)

---

१. वृद्धश्रवाः— वृद्धः–प्रवृद्धः श्रवाः यशो-कीर्तिर्वा यस्य सः ।

जिसके नियमो को कोई तोड न सके, जिसका गति को कोई रोक न सके ऐसा अप्रतिहत नियमो वाला ऐसी अप्रतिहत [illegible] सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सब कल्याण करने वाला प्रभु हमारा कल्याण करे। (बृहस्[illegible] दधातु) वेदज्ञान का अधिपति वा ब्रह्माण्ड का अधिपति परमेश्वर हमारा कल्याण करे [illegible]

जो जन उस महान् प्रभु की आज्ञाओ का पालन करता है उसका प्रभु वह महान् कीर्ति वाला, सब जगत् का सम्राट्, सर्व पदार्थों का स्वामी, सर्वज्ञ, सर्वपोषक, सर्वव्यापक, अबाधगति वाला, ज्ञान और ब्रह्माण्ड का अधिपति प्रभु सब प्रकार से कल्याण करता है, अर्थात् वह हमे शारीरिक सुख मानसिक शान्ति और आत्मिक तृप्ति प्रदान करता है ।

---

२ अरिष्टनेमि — [नेमि वज्रनाम' निघ० ३ २०] तार्क्ष्य — तूर्णमर्थं रक्षति अश्नोतेर्वा (निरु० १० २६)

३ वाग्वै बृहती तस्या एष पति तस्माद् उ बृहस्पति । शतपथ १४ ४ १२२ ॥
ब्रह्म वै बृहस्पति (ऐ० ब्रा० १.१३)

महापुरुषों के वचन—

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें, उनका त्यागकर परस्पर प्रीति से वर्ते-वर्तावें तो जगत् का पूर्णहित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेक विध दुःख की वृष्टि और सुख की हानि होती है।

(महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश भूमिका)

स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठकी की जाती है। श्रेष्ठ उसको कहते है जो गुण, कर्म, स्वभाव और सत्य-सत्य व्यवहारी में सब से अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं। जिसके तुल्य कोई न हुआ, न है और न होगा जब तुल्य नहीं तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है? जैसे परमेश्वर के सत्य, न्याय, दया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण है वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीव के नहीं है। जो पदार्थ सत्य है उसके गुण, कर्म स्वभाव भी सत्य होते हैं। इसलिए मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति-प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्न की कभी न करें।

(महर्षि दयानन्द) सत्यार्थ प्रकाश द्वि० स०

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

विदुर नीति ५.१५

हे राजन्! निरन्तर प्रिय अर्थात् मधुर बोलने वाले पुरुष तो संसार में बहुत मिल जाते हैं; किन्तु अप्रिय अर्थात् कड़वे, हितकारी वचनों का कहने वाले और सुनने वाले तो दुर्लभ ही होते हैं।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
यथा शरीराणि विहाय
जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

गीता २.२२॥

जैसे एक मनुष्य अपने पुराने वस्त्रों को उतार कर दूसरे नए वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को छोड़ कर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त होता है।

Sives of great men,all remind us.
we can make our lines sublime.

(Long Fellow)

महात्माओं के जीवन हमको स्मरण दिलाते है कि हम भी अपने जीवनों को उत्कृष्ट बना सकते हैं।

★★★

महापुरुष चरितम्

महर्षि दयानन्द

प्रयाग में गंगा के तट पर एक महात्मा जी रहते थे। वे बड़े वृद्ध थे, जब कभी महर्षि दयानंद जी उन्हें मिलते, तो महर्षि जी को वे 'बच्चा' कहकर सम्बोधित करते। एक दिन उस वृद्ध महात्मा ने महर्षि जी को कहा— 'बच्चा, अगर तू पहले से ही निवृत्ति-मार्ग में स्थिर रहता और इस परोपकार के झगड़े में न पड़ता तो तू इसी जन्म में ही मुक्त हो जाता। अब तो तुम्हें एक और जन्म धारण करना पड़ेगा।'

महर्षि ने कहा — 'महात्मन्! मुझे अपनी मुक्ति का कुछ भी ध्यान नहीं है। जिन लाखों जनों को मुक्ति की चिन्ता मुझे चलायमान कर रही है उनको मुक्ति हो जाए. मुझे भले ही क्यों न कई जन्म धारण करने पड़ें। दुःखों से, कष्टों से, आपत्तियों से, दीन-हीन अवस्था से, परमपिता के इन पुत्रों को मुक्ति दिलाते-दिलाते मैं स्वयं ही मुक्त हो जाऊंगा।

स्वामी श्रद्धानन्द

१४ श्रावण सम्वत् १९३६ को क्रांति के अग्रदूत महर्षि दयानन्द बरेली पधारे। मुन्शीराम के पिता श्री नानकचन्द जी को आदेश मिला कि पण्डित दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों में कोई उपद्रव न हो ऐसा प्रबन्ध करें। प्रबन्ध के लिए वे स्वयं सभा में गए और महर्षि के व्याख्यान से बड़े प्रभावित हुए, साथ ही उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि उनके नास्तिक पुत्र की संशय-निवृत्ति उनके सत्संग में हो जायेगी। घर आकर उन्होंने मुन्शीराम से कहा—'बेटा मुन्शीराम! एक दण्डी संन्यासी आए हुए हैं। वे बड़े ही विद्वान् महापुरुष हैं। उनका व्याख्यान सुनने पर मुझे विश्वास है तुम्हारे सब संशय दूर हो जायेंगे। कल तुम उनका व्याख्यान सुनने के लिए मेरे साथ चलना'।

दूसरे दिन जब मुन्शीराम जी अपने पिता जी के साथ वहां व्याख्यान सुनने गए तो ज्यों ज्यों वे महर्षि दयानन्द सरस्वती का व्याख्यान सुनते गए त्यों त्यों उनका हृदय महर्षि की ओर आकर्षित होता गया। उस दिन मुन्शीराम जी को ऐसा लगा कि जैसे किसी भटके हुए मानव को कोई राह मिल गई हो और वह उस राह पर आगे बढ़ने के लिए निरन्तर उत्सुक होता जा रहा हो। महर्षि का उस दिन का व्याख्यान परमात्मा के निज नाम 'ओ३म्' पर था। व्याख्यान के सम्बन्ध में मुन्शीराम (जो बाद में स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से अत्यन्त विख्यात हुए) ने स्वयं लिखा

है—'वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद मैं कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना उस ऋषि आत्मा का ही काम था'।

सन्त अब्दुल्ला

एक बार एक सन्त अब्दुल्ला बाजार से कपड़ा खरीदने के लिए अपने बेटे के साथ बाजार गए। दुकानदार ने उन्हें कपड़ा दिखाया। सन्त अब्दुल्ला ने मूल्य में कुछ कमी के लिए कहा, पर वह वस्त्र विक्रेता नहीं माना। उस दुकानदार का पड़ोसी सन्त अब्दुल्ला को जानता था, अतः वह अपने पड़ोसी उस दुकानदार से बोला, 'भाई सहाब तुम जानते हो ये कौन हैं? अब्दुल्ला सन्त है, अब्दुल्ला सन्त है।"

अब्दुल्ला सन्त यह शब्द सुनते ही वहां से उठ खड़े हुए व अपने बेटे का हाथ पकड़कर उससे कहने लगे- बेटा, चलो! हम यहां कपड़ा पैसों से खरीदने आये हैं अपने दीन से नहीं।" और वे कपड़ा लिए बिना चल दिये। दुकानदार उस महान सन्त अब्दुल्ला की बात सुनकर उसकी महानता पर स्तब्ध हुआ देखता ही रह गया।

**

गतांक से आगे:—

महर्षि दयानन्द-सरस्वती-प्रतिपादितं-वैदिक-दर्शनम्

डा० गोपाल शास्त्री दर्शन केसरी (वाराणसी)

[महर्षिदयानन्द प्रतिपादित वैदिक दर्शनम् से सामार गृहीत]

बौद्धोऽन्वधावत्तदनु कथमपि स्वात्मलाभः कणादा-दित्यादि ।

पाठ्यग्रन्थनिर्देशः

महर्षिदयानन्दसरस्वतीमहोदयेनार्षग्रन्थाध्ययनाय कियतां ग्रन्थानां नामान्यपि निर्दिष्टानि तत्तु सत्यार्थप्रकाशपुस्तके तृतीयसमुल्लासे द्रष्टव्यम् । इहापि कतिपयानां नामनिर्देशः क्रियते । तथाहि पाणिनेरष्टाध्यायी पतञ्जलेर्महाभाष्यमिति ग्रन्थ-द्वयमेवार्षव्याकरणेऽध्येयम् । ततो हि षण्णां दर्शनानां सूत्राणि तेषामार्षभाष्याणि चाध्येयानि । वेदाना-मध्ययनं सर्वैरेव पुरुषैः स्त्रीभिर्वा सर्वथा श्रद्धया विश्वासेन विधेयम् । तथैव वेदाज्ञा विद्यते—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च । यजु० २६।२

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।'
(अथर्व० ११।५।१८)

श्रौतसूत्रादिषु 'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्' इत्यादि-लिङ्गनिर्देशात् स्फुटं स्त्रीणां वेदाध्ययनं प्रतीयते । पुराकाले गार्गी मैत्रेयी आत्रेयी प्रभृतयो बह्व्य स्त्रियो वेदविदुष्यो बभूवुः । उत्तररामचरितनाटके भवभूतिरपि स्त्रीणां वेदाध्ययनं वक्ति—

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे
भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति ।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्त-विद्यां
वाल्मीकि-पार्श्वादिह पर्यटामि ।।

बौद्धकालीनायाः विज्जकायाः गर्वोक्तिः प्रसिद्धैव— "नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां माम-जानता । वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती" इति स्त्रीणां वेदाध्ययने बहूनि प्रमाणानि सन्तीत्यलम् ।

महर्षिदयानन्दसरस्वती-सिद्धान्ते चतुर्णां वेदानां संहिताभागस्यैव वेदसंज्ञा, स्वतः प्रमाण्यं च । ईश्वरप्रेरणया ऋषियो मन्त्रद्रष्टारः शाखाविभागेन ११२७ सप्तविंशत्युत्तरैकादशशतानि शाखा विभ-जन्ति । ततो ब्राह्मणग्रन्था आरण्यकानि उपनिषदश्च ऋषिप्रोक्तानि परतः प्रामण्यं च तेषां स मनुते । तेषु ब्राह्मणग्रन्थानां पारिभाषिकी वेदसंज्ञा तथैवा-रण्यकानि उपनिषदश्च वेदानुकूलतयैव प्रामाण्य-मञ्चति । वेदे सर्वेऽपि यौगिकाः शब्दाः सन्ति ।

न तत्र रूढिशब्दो नापि कोऽपीतिहासस्तत्र तन्मये विद्यते ।

नाम च धातुजमाह निरुक्ते
व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
यन्न पदार्थ-विशेषसमुत्थं
प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ।
(म० भा० ३।३।१)

इत्यादि प्रमाणतो निरुक्तदिशैव स वेदार्थं तनोति । सर्वेषामेव मन्त्राणामाध्यात्मिकमाधिदैविकमाधिभौतिकं त्रिविधमर्थं मनुते सः । वेदे महीधरादीनामश्लीलार्थं तथेतिहासादिकं नाङ्गीकरोति । स हि वैदिकयज्ञेषु पशुहिंसां न मनुते । 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इति हि प्रमाण-वाक्यं तस्य ।

स हि वेदे एकस्यैवेश्वरस्यैव पूजामर्चां मनुते, न विविधानां नापि मूर्तिपूजां समर्थयति । नाप्यवतारवादं नैव जन्मना वर्णव्यवस्थां स्वीकरोति । मृतकश्राद्धादिबाह्याडम्बरस्य अनौचित्यं प्रतिपादयन् "पञ्चैतान् यो महायज्ञान् न हापयति शक्तितः" इति मनूक्तान् एव पञ्च महायज्ञान् समर्थयति तथाहि—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥
(मनु० ३।७०)

इत्यादि सर्वं मनूक्तविधिं ते समर्थयन्ति । किं बहुना—

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां ।
तेनेशस्य विधीयतामपचितिर्वर्णाश्रमः सेव्यताम् ॥

राष्ट्रं चाद्रियतां प्रसू-जनकयोराज्ञा समायतां ।
सम्मानेन सुशिक्षया च सततं कन्याकुलं सिच्यताम् ॥

वेदः सर्वविद्यानामाश्रयः । वेदस्य पठनं पाठनं श्रवणं श्रावणं च आर्याणां परमो धर्म इति महर्षिस्वामिदयानन्दसरस्वतीवर्यस्य स्वरचितमेकं पद्यमिति तद्विलिख्य विरम्यते—

ब्रह्मानन्तमनादि विश्वकृदजं सत्यं परं शाश्वतम् ।
विद्या यस्य सनातनी निगमभृद्वैधर्म्यविध्वंसिनी ॥
वेदाख्या विमला हिता हि जगते नृभ्यः सुभाग्यप्रदा
तन्नत्वा निगमार्थभाष्यमतिना भाष्यं तु तन्तन्यते
॥ १ ॥

एकमस्माकमपि स्रग्धराछन्दसा पद्यम् स्वामिसम्बन्धि—

स्वामी ब्रह्मर्षिरेव प्रहित इह
भुवि ध्वस्त-सन्मार्ग-लोकान् ।
उद्धर्तुं वेदवाक्यैः सुविवृति
विततैर्वेदवित् द्वैतवादी ॥
सर्वान् पुंसः स्त्रियो वा
निरुपधि विमले वेदमार्गे प्रवेष्टुं ।
ब्रूते सत्यार्थ-शास्त्रं
व्यवहृतिनिपुणोऽद्वैतवादो न हेयः
॥ १ ॥

इति श्रीमहर्षिस्वामिदयानन्दसरस्वती-विषये डिण्डिमघोषः ।

वैदिकदर्शनं समाप्तम् । शुभं भूयात् ॥

राष्ट्रकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

ले० रामप्रसाद वेदालंकार आचार्य
उप-कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर का जन्म ७ मई १८६१ को हुआ। इनके पूर्वजों के सम्बन्ध में बताया जाता है कि कन्नौज नरेश ने भट्ट नारायण को बंगाल के नरेश आदिसुर के निवेदन पर यज्ञ कर्म में सहायता करने के लिये सन् १०७२ में बंगाल भेजा था। इस वंश को मुगल दरबार से 'ठाकुर' की उपाधि प्रदान की गई थी।

गुरुदेव रवीन्द्र के पितामह श्री द्वारकानाथ ठाकुर बंगाल प्रान्त के इने-गिने धनी-मानी जनोंमें समझे जाते थे। वे १८४२ में यूरोप गए थे और वहां के राजवंशों से मिले थे। गुरु श्री रवीन्द्रनाथ के पिता देवेन्द्रनाथ को 'महर्षि के नाम से सम्बोधित किया जाता था। प्रसिद्ध समाज सुधारक और ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजा राममोहनराय के सत्कार्यों में उन्होंने अपने जीवन में यथेष्ट योग-दान दिया था। ठाकुर परिवार ब्रह्मसमाज का एक दृढ़ स्तम्भ था।

बाल्यावस्था में श्री रवीन्द्रनाथ की माता स्वर्ग सिधार गईं। अतः घर के सेवकों के द्वारा ही प्रायः उनका लालन-पालन हुआ। इनका प्रायः पर्याप्त समय पर्यटन और आराधना में ही व्यतीत होता था। यद्यपि उनको स्कूल में भर्ती किया गया पर उनकी स्वतन्त्र प्रकृति स्कूल की चार दीवारी में बन्ध न रह सकी। अतः उनका सारा शिक्षण प्राय घर पर ही हुआ। उनके जीवन पर ब्रह्म समाज के सुसंस्कृत वातावरण का भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा। अपने पूज्य पिता जी के प्रभाव से रहने के कारण उनमें भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी आस्था जम गई। उपनिषों, काव्य ग्रन्थों और वैष्णव कवियों के कविताओं के अध्ययन का उनके विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। २० सितम्बर १८७० को वे अपने बड़े भाई के साथ उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिए हालैंड गए, पर एक ही वर्ष वहाँ रहकर स्वदेश लौट आए। बंगाल का वातावरण साहित्य और राजनीति से पूर्णतया आच्छादित था। इन में प्रारम्भ से कविता लिखने की तीव्र प्रवृत्ति थी। 'भारती'' में इनकी रचनाएं प्रकाशित होने लगी 'संध्या संगीत' के प्रकाशन से इनका स्थान काव्य जगत् निश्चित हो गया। इसके अनन्तर अनेक गद्य और पद्य रचनाएं इनकी प्रकाशित हुई। शनैः-शनैः इनकी रचनाओं में अद्वितीय प्रौढ़ता, विचारों का गम्भीर्य और कला के दर्शन होने लगे। इन के गीत, रूपक व्यंग्य, गल्प, उपन्यास, नाटक और आलोचना आदि सभी क्षेत्रों में इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय देने लगे।

१९०१ में बोलपुर में शान्ति निकेतन विद्यालय की इन्होंने स्थापना की। २२ दिसम्बर १९२१ को यह संस्था 'विश्व भारती' बन गई। यहां भारतीय प्रणाली पर छात्र को उच्चशिक्षा दी जाती है, और छात्र के व्यक्तित्व के विकास पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। पं० जवाहर लाल जी के शब्दों में "जिसने शान्ति निकेतन नहीं देखा उसने भारत नहीं देखा" यह विद्यालय आज महाविद्यालय ही नहीं वरन् विश्वविद्यालय बन गया है। आज संसार के विभिन्न देशों के विद्यार्थी यहां आकर शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। और प्रौढ़ विद्वान् भी यहाँ रहकर अपनी साधना को सफल बना सकते हैं।

सन् १९०९ में इन्हों ने 'गीताञ्जलि' लिखी और बाद में सन् १९१२ में इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया। इग्लैण्ड के प्रसिद्ध साहित्यकारों और कला मर्मज्ञों की दृष्टि ज्यों ही इस अनुपम ग्रन्थ पड़ी वे, मन्त्र मुग्ध हो गए। 'इण्डिया सोसायटी' ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया और आयरिश कवि इट्स ने इसकी भूमिका लिखी। पश्चिमी कलाकार 'गीताञ्जलि' के गूढ़ आध्यात्मिक भावों से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने इसे अपने काल का सर्वोत्कृष्ट काव्य स्वीकार किया। सन् १९१३ में गुरुदेव को 'नोबल प्राईज' प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त तो फिर इनको संसार के कोन-कोने से सम्मान प्राप्त हुआ। कलकत्ता विश्व-विद्यालय ने उनको डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की। सन् १९१८ में भारत सरकार ने उन्हें 'सर' की की पदवी प्रदान की। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने शान्तिनिकेतन में कन्वोकेशन कर उन्हें 'डाक्टर आफ लिटरेचर' का सम्मान दिया।

प्रथम महायुद्ध के उपरान्त जब जलियां वाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ तो इन्होंने 'सर' की उपाधि का परित्याग करते हुए १९१९ में लार्ड चेम्सफोर्ड को बड़ा रोषपूर्ण पत्र लिखा। सरकार ने इसे नामंज़ूर कर दिया। किन्तु आगे चल कर इन्होंने फिर 'सर' की उपाधि का कभी प्रयोग नहीं किया। इनकी आत्मा सदैव भारत के गौरव की रक्षा के लिये कटिबद्ध रहती है महात्मा गांधी जी एवं इन के कार्यों पर उनकी बहुत श्रद्धा थी। अत: राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ उनकी गहरी सहानुभूति थी।

१९३१ में आप ने रूस की यात्रा की वहाँ से उन्होंने जो पत्र लिखे थे उससे उस समय की उन्नति का स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है। ये पत्र लोक जीवन के विकास के सम्बन्ध में कवि की उन्नतिशील प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करते हैं।

अन्त में ७ अगस्त १९४१ को अपनी आयु के ८१ में आप स्वर्ग सिधार गए। आप के संसार से उठ जाने पर संसार में एक महान् व्यक्ति उठ गया यह सर्वत्र अनुभव किया गया। तो भी आपकी अमूल्य निधि आप द्वारा रचित रचनाओं को जब साहित्य और कला प्रेमी पढ़ते हैं तो सब

का मस्तक आप के चरणों में सहज ही झुक जाता है।

गुरुदेव ने अपने जीवन में ३०० काव्य ग्रन्थ ३० नाटक, १६ कथासंग्रह, २० कलात्मक वाङ्मय और १६ राजनीतिक पुस्तकों की रचना कर के बंगला साहित्य को अत्यन्त समृद्ध रचनाएं निम्न-लिखित है—

गीताञ्जलि, गार्डनर, क्रिसेंट मून, नेशनलिज्म गोरा, घर बाहिरे, सोनारतरी, बलाका, कालिका जीवनस्मृति, चित्रांगदा, मालिनी, मुक्तधारा, पोस्ट आफिस, फाल्गुनी, रिसिजन आफमेन, क्रियेटिव यूनिटी, संचयिता, चयनिका इत्यादि।

ऐसे महान् कविवर के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें भी शक्ति दे कि हम भी ऐसे महा-पुरुषों की नाई जग में आकर कुछ ऐसा कार्य कर सकें जहां हमारा नाम उज्वल हो वहां राष्ट्र का भी नाम उज्वल हो।

❀ ❀ ❀

दयानन्द और वेद

प्रो० मनुदेव बन्धु, एम. ए.
प्राध्यापक--वेद विभाग गु० का० वि० वि० हरिद्वार

सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने वेद को सर्वोपरि मानते हुए घोषणा की थी कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। इस घोषणा से देश और विदेश में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ, दयानन्द ने अपना समग्र जीवन वेद के प्रचार व प्रसार में बिताया। वेद सार्वकालिक और सार्वभौम है। वेद शाश्वत और सनातन है। वेद ज्ञान तो उस सरिता की तरह है जो निरन्तर प्रवाहित हो रही है। अनादिकाल से अनन्तकाल तक। जिसमे जितनी क्षमता है जिसमे जितनी ग्राहक शक्ति है वह उतना ही वेद ज्ञान रूपी सरिता से जल ग्रहण कर सकता है। तो आईये हम वेद विषयक दयानन्द की मान्यताओं का अध्ययन करें।

(१) महर्षि दयानन्द ने अत्यन्त प्रबलयुक्तियों से और प्रमाणों से मानव सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता को सिद्ध करते हुए अनेक कसौटियों से प्रमाणित किया कि ईश्वरीय ज्ञान वेद ही है, जिसकी शिक्षाये सर्वथा पवित्र, सार्वभौम, युक्ति तथा तत्त्वज्ञान सम्मत हैं।

(२) वेद ईश्वरीय ज्ञान है और मानवसृष्टि के प्रारम्भ में प्रकाशित होने के कारण नित्य है। अतः उनमें अनित्य इतिहास नहीं हो सकता। वेदों में पाये जाने वाले वसिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अग्नि, कवि इत्यादि शब्द व्यक्तिवाचक नहीं, प्रत्युत गुण विशिष्ट व्यक्ति तथा पदार्थ वाचक हैं। जैसे कि प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः (शतपथ ८।१।१।६) प्रजापतिर्वै वसिष्ठः (कौषीतकी ब्रा० २५।२२६।१६) प्रजापतिर्वै जमदग्निः (शत० १३।२।२।१४) श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः (शत० ८।१०।२।६) मनोवैभारद्वाज ऋषिः (शत० ८।१।१।६) प्राणो वै अङ्गिराः (शत०-।१।२।८) कण्व इति मेधाविनाम (निघण्टु ३।५) इत्यादि वैदिक वचनों से सिद्ध होता है।

(३) वेदों के शब्द योगिक वा योगरुढ़ हैं, केवल रूढ़ नहीं जैसे—"सर्वाणि नामान्याख्यातजानीति नैरुक्त समयश्च शाकटायन: नि. १।४।१२ नाम च धातुजमाह निरुक्ते, व्याकरणे शकटस्य च तोकम्" (महाभाष्य ३।३।१) वेद के शब्दों को लौकिक संस्कृत के अनुसार रूढ़ मानकर उनकी व्याख्या करना उचित नहीं। यौगिक होने के कारण अग्नि, इन्द्र मित्र, वरुण, यम मातरिश्वा, रुद्र, देव आदि शब्द आध्यात्मिक, अधिदैविक, अधिभौतिक दृष्टि से अनेकार्थक है।

(४) वेद विशुद्ध रूप से एकेश्वरवाद का प्रतिपादक है। अग्नि, मित्र, इन्द्र, वरुण आदि शब्द प्रधानतया परमेश्वर वाचक है। यथा—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्त सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यम मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋ. १।१६४।४६)

अधिभौतिक क्षेत्र में वे ज्ञानी ब्राह्मण, ऐश्वर्य सम्पन्न राजा, जीव, पुरोहित, अज्ञानान्धकार निवारक श्रेष्ठ पुरुष इत्यादि के भी वाचक हैं। ८ वसु, ११ रुद्र, १२ अदित्य (मास) इन्द्र (विद्युत); और प्रजापति (यज्ञ) ३३ तत्त्व प्रकाशदायक तथा लाभकारी होने के कारण वेदादि शास्त्रों में देव कहे गये हैं। किन्तु उपास्य देव एक परमेश्वर ही है।

(५) यज्ञ शब्द यज् धातु से बनता है, उसके देवपूजा, संगतिकरण और दान, ये तीन अर्थ हैं। जो अपने से बड़ों, बराबर स्थिति वालों और हीनों (छोटों) के प्रति कर्त्तव्य के सूचक हैं। अतः अपने तथा जगत् के कल्याण के लिए किया गया प्रत्येक शुभकार्य यज्ञ कहलाता है। यज्ञों में पशु-हिंसा सर्वथा वेद विरुद्ध है। यज्ञ के लिए वेदों में सैकड़ों स्थानों पर "अध्वर" शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ है "अध्वर इति यज्ञनाम ध्वरति हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेध" [निरुक्त १।८] यास्काचार्य के मतानुसार हिंसा-रहित शुभकर्म यज्ञ है।

(६) वेदों में आध्यात्मिक विद्या के अतिरिक्त भौतिक विद्याओं का भी बीज रूप से उपदेश है। ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद, समाजशास्त्र राजनीतिशास्त्र, विज्ञान (Science) आदि का मूल वेदों में विद्यमान है। महर्षि दयानन्द द्वारा अभिमत ये मन्तव्य प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा सम्मत हैं और उनके समर्थन में सैकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं।

(७) वेद में सभी को वेदाध्ययन का अधिकार दिया गया है। "यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः" (यजु. २६।२) इस वैदिक आदेशानुसार दयानन्द ने नारी और शूद्रों को अध्ययन का अधिकार दिया।

(८) महर्षि दयानन्द के वेदार्थ विषयक-शास्त्र तथा तर्क सम्मत इस क्रान्ति का देश-विदेश के विद्वानों पर भी अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा है। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रो० मैक्समूलर तथा नोबल पुरस्कार विजेता और "महान् रहस्य" (Great Secret) नामक ग्रन्थ के लेखक मेटलिंक दोनों ने वेदों को ज्ञान का विशाल भण्डार बताया है, जिसे मानव सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषियों पर प्रकट किया गया है।

Vast resevoir of the wisdom that some where took shape simultaneously with the origin of man.

(Materlink in the Great sercet)

रूसी ऋषि तास्ताय, अमेरिका के विचारक थोरिजो थायर के जेम्स कजिन्स इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों पर तथा जगत् विख्यात योगी श्री श्री अरविन्द, योगी श्री कपाली शास्त्री, श्रीमाधव पुण्डरीक पंडित आदि भारतीय विद्वानों पर और पारसी विद्वान् श्री दावाचान जी, सरसय्यद अहमद खां, सरयासिन खां आदि मुसलमान विद्वान् पर महर्षि दयानन्द के वेद विषयक विचारों और वेदभाष्यादि का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा।

स्वर्गीय पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति तथा अन्य आर्य विद्वानों से जीवन भर शास्त्रार्थ करने वाले महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी को भी लिखना पड़ा कि—वेद के वैज्ञानिक युग के व्याख्याकार श्री स्वामी दयानन्द जी हैं। उन्होंने

वेद के गौरव की ओर आर्य जाति की दृष्टि बहुत कुछ आकृष्ट की है। इस कारण से उनका भी उपकार विशेष माननीय है। "वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति पं गिरधर शर्मा जी कृत"।

पण्डित राज सारस्वत, सार्वभौम सामवेद और यजुर्वेद भाष्यकार स्वामी भगवदाचार्य जी कनखल हरद्वार के महामण्डलेश्वर चातुर्वर्ण्य भारत समीक्षा, ऋग्वेद, यजुः, साम, अथर्वसंहितोपनिषच्छतकों के लेखक परहंस परिव्राजक स्वामी महेश्वरानन्द जी गिरि इत्यादि विद्वानों पर महर्षि दयानन्द के वेद विषयक मन्तव्यों का यह प्रभाव पड़ा कि उन्होंने स्त्री-शूद्रादि सब के वेदाधिकार के सिद्धान्त का अपने ग्रन्थों में पूर्णतया समर्थन किया है। दयानन्द के गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था के सिद्धान्त को स्वीकारा है।

The Vedas are thc criptures of true knowledge.

(Swami Dayanand Saraswati)

ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या

डा० सत्यव्रत राजेश, गुरुकुल कांगड़ी वि वि हरिद्वार

वैदिक धर्म के अनुसार विश्व ब्रह्माण्ड मे तीन तत्वो का खेल है एक वह तत्त्व जिसमे जगत बना दूसरा जिसके लिए बना तथा तीसरा जिसने बनाया। इन त्वो को क्रमश प्रकृति जीव तथा ईश्वर कहते है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है जीव अनेक है तथा परमात्मा एक एक होने पर भी परमेश्वर के नाम अनेक हैं यह अग्नि मित्र वरुणम् इस ऋग्वेद मन्त्र से त देवाग्निस्त दादित्य इस यजु ३२ १ म त्र स तथा स ध ता इस अथर्व० म त्र से सुस्पष्ट है। उपयुक्त तीन सत्ताओ का स्पष्ट निदश—

> द्वा सुपर्णा सयुजासखाया समान
> वृक्ष परिष्वजाते।
> तयोरन्य पिप्पल स्वाद्वत्त्यनश्नन यो
> अभिचाकशाति॥

इस ऋचा मे मिलता है जिसके अनुसार दो शोभन पक्षी हैं जो सदा साथ रहते तथा मित्रभाव रखते हैं उन्ही के समान एक नश्वर—परिवतनशील तत्व है जिसका य दोनो आलिगन किये हुए हैं किन्तु पूर्वोक्त समानता होने पर भी दोनो मे एक भेद स्पष्ट है वह यह कि उन दोनो मे से एक इस प्रकृति के स्वादु फलो को खाता है प्रकृति का भोग करता है तथा दूसरा—न खाते हुए केवल द्रष्टा बन कर देखता रहता है" भाव यह है कि जीव प्रकृति सत्व रजस तथा तमोगुण से उत्पन्न सुख दु ख तथा मोह रूपी फलों का भोक्ता है तथा प्रभु द्रष्टा मात्र।

वेद तथा उपनिषदो मे इन तीन तत्वो का इतना स्पष्ट उल्लेख होने पर भी हमार दाशनिक जगत मे विभि न मान्यताए है। चार्वाक के अनुसार प्रकृति ही एक तत्व है जो पथिवी जल अग्नि तथा वायु इन चार तत्वो का कारण है ये चार तत्व जब विशेष परिमाण मे मिल जाते हैं तब इन्ही स चत य की उत्पत्ति इस प्रकार हो जाती है जसे गु आदि से मादकता यद्यपि जड त्वो मे स्वय मिलने की शक्ति है और न स्वय मिलने को शक्ति है और न स्वय पथक होने की यदि उत्पत्ति तथा विनाश जसे विरोधी काय बिना चेतन क स्वय होन लगे तब तो रेल मोटर आदि बिना किस चालक के स्वय आगे पीछे चलते दिखाई पडते। बिना चित्रकार के स्वय चित्र बन जाया करते तथा बिना कुम्हार के घट आदि। कि तु इस बात को कोई मूख भी नही मान सकता अत बुद्धिपूवक की गई कृति मे किसी चेतन तथा तज्ज्ञ तत्व का हाथ अवश्य मानना पडगा। इस लिए यह सिद्धान्त बिनाकर्ता के कृति मानने के कारण मान्य नही हो सकता।

दूसरे दार्शनिक प्रकृति तथा जीव इन दो तत्वों को मानते हैं प्राचीन जनाचार्यों की ऐसी ही मान्यता थी उनके अनुसार साधना की चरम परिणति ईश्वरत्व ही है। अत कठोर साधना करके जीव ही ईश्वर बन जाता है जगत का कर्ता ईश्वर कोई नही है बीज से बीज उत्पन्न होना है तथा यही क्रम सदैव चलता रहता है। प्रत्यक्ष का अपलाप करने में यह मत भी मान्यकोटि मे नही आता क्योंकि ससार मे कही भी कर्ता के बिना समार रूप से बनी कृति दिखलाई नही देती। क्रमशः तथा बुद्धिपूर्वक बनी वस्तु कर्ता का स्वय बोध करा देती है चाहे हमने उस कर्ता को न देखा हो। घडी, पैन साईकिल पुस्तक आदि वस्तुओं के बनाने वाले को न देखने पर भी हम उसे स्वय निर्मित नही कह सकते।

तीसरे दार्शनिकों के अनुसार ब्रह्म ही एक मात्र वस्तु है न जीव की पारमार्थिक सत्ता है और न प्रकृति की सब ब्रह्म का ही प्रपञ्च है, जैसे मकडी अपने म से जाला निकालती तथा अपने म समेट लेती है इसी प्रकार ब्रह्म अपने मे से ससार को निकालता तथा प्रलय मे स्वय मे लीन कर लेता है। विद्वान् इस बात को भी स्वीकार नही करते उनका कहना है कि मकडी जीवित अवस्था मे ही जाले को निकाल तथा समेट सकती है मृतावस्था मे नही अत जाले को निकालते समय मकडी का आत्मा तथा शरीर ये दो तत्व वतम न थे। इस अवस्था मे मकडी के आत्मा ने मकडी के शरीर मे जाला निकाला है अत आत्मा एव शरीर इन दो तत्वों ने मिलकर जाले की रचना की है। इसी प्रकार परमेश्वर भी ससार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण नही हो सकता। अपितु मकडी के दृष्टान्त के समान उसे निमित्त कारण ही मानना पडेगा वैदिक धर्मी पूर्वोक्त तीनो तत्वों की सत्ता स्वीकार करता है। उनके अनुसार ब्रह्म सत्य जगन् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर का जो अर्थ 'ब्रह्म सत्य है जगत् स्व नवत मिथ्या है तथा जीव ब्रह्म ही है भिन्न नही यह इस श्लोकाश का अर्थ भी युक्त नही है अपितु इसका वास्तविक अर्थ यह है—ब्रह्म सत्यम्–परमात्मा सत्य सदा एक रस अपरिवर्तन शील है तथा जगत मिथ्या–सत्य से विपरीत अर्थात परिवर्तनशील है। जीव ब्रह्म एव न— जीव ब्रह्म नो ही है अपितु अपर —ब्रह्म से भिन्न है।

* * *

तृतीय रश्मि:

अनुव्रतः पितुः पुत्रः ॥ अथर्व ३.३०.२ ॥

अन्वयार्थः–[पुत्रः पितुः अनुव्रतः [भवतु]) पुत्र पिता का अनुव्रती हो।

पुत्र को चाहिए कि वह अपने जन्मदाता एवं पालन-पोषण कर्त्ता पिता के अनुकूल व्रत करने वाला हो-अनुकूल कर्म करने वाला हो।

व्याख्या–पुत्र का कर्तव्य है कि वह पिता के अनुकूल व्रत करे–बेटे को चाहिए कि वह अपने बाप की आज्ञा के अनुसार कार्य करे।

वास्तव में पुत्र तभी ऐसा कर सकेगा जबकि वह यह सोचे, वह यह समझे, वह यह विचारे, वह यह अनुभव करे कि "यह मेरा पिता है और मैं इस का पुत्र हूं। और पुत्र होने नाते मुझे ऐसा लगता है कि जब मेरा जन्म हुआ होगा तो अन्य सब पिताओं की तरह मेरे इस पिता ने भी मेरे जन्म पर खूब प्रसन्नता अनुभव की होगी, खूब खुशियां मनाई होंगी, खूब लड्डु-पेड़े बांटे होंगे। इतना ही नहीं इन्होंने मेरा जात कर्म संस्कार करके स्वर्णशलाका को मधु और घृत में (शहद और घी में) डुबो-डुबो कर मेरी जिह्वा पर बड़े लाड़ और प्यार से परमेश्वर का मुख्य नाम 'ओ३म्' लिखा होगा, इसलिए कि मैं आस्तिक बनूं; मैं ईश्वर विश्वासी बनूं, ईश्वर पर हृदय से निष्ठा रखता हुआ मैं उसकी प्रतिदिन उपासना करूं, प्रतिदिन मैं भी प्रातः-सायं दोनों समय उसका श्रद्धा भक्ति और प्रेम से भजन करूं। इसी पिता ने मेरी लम्बी आयु की कामना भी की होगी, उस के लिए प्यारे प्रभु से प्रार्थना भी की होगी, सब बन्धु-बान्धवों और सामाजिक सज्जनों के साथ मिलकर मुझे दीर्घायु का आशीर्वाद देकर मुझ पर फूल भी बरसाये होंगे, मुझ पर पुष्पों की वर्षा भी की होगी। नहीं नहीं वे केवल मेरी लम्बी आयु की कामना, प्रार्थना आदि करके ही आराम से नहीं बैठ गए होंगे वरन् उन्होंने तदनुसार जी-जान से परिश्रम कर, एड़ियां घिस घिस कर मुझे हर दृष्टिसे स्वस्थ, समर्थ और योग्य-सुयोग्य, सम्पन्न-सुसम्पन्न बनाने का हार्दिक प्रयास भी किया होगा। उन्होंने पुनः मेरा नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णभेद, मुण्डन, उपनयन, वेदारम्भ संस्कार आदि भी बड़ी उमंग से किया होगा, यह सब कुछ उन्होंने इसलिए ही किया होगा कि मैं कभी उनके अरमानों की साक्षात् मूर्ति बन सकूं, मेरी कभी उनके हार्दिक उत्तम सङ्कल्पों के अनुसार एक सुन्दर तस्वीर तैय्यार हो सके। तात्पर्य यह है कि कभी मैं ऐसा महान् बन सकूं कि जिस से मेरे पूज्य पिता को देख-देख कर या-सुन सुन कर तृप्ति मिले-प्रसन्नता अनुभव हो। यह सब कुछ वह इसलिये भी करता है कि मैं कभी उनका अनुव्रती बन सकूं, उनका

आज्ञाकारी बन सकूं, उनकी भावनाओं के अनुरूप, उनके उत्तम व्रतों-कर्मों के अनुसार एक सच्चा पुत्र बन सकूं, एक अच्छा पुत्र बन सकूं, ताकि उन को मुझ पर गर्व हो।।

पिता होने के नाते वे मुझे अपना पुत्र समझ कर मुझ से यह भी आशा करते हैं कि पुत्र होकर मैं आने वाले समय में उनको पुत्-नरक से तार सकूं। अर्थात् मैं जब सब प्रकार से समर्थ हो जाऊं और वे असमर्थ हो जाएं-वृद्ध हो जाएं तो उनको नरक से, कष्ट से, आपत्ति से तार सकूं, उभार सकूं, बचा सकूं।

जिस पिता ने मेरी जिह्वा पर बड़े प्रेम से प्रभु का "ओ३म्" नाम लिखा था वह सम्भवतः यह सोच कर लिखा था कि--"बेटा सब कुछ भूल जाना पर जिस महान् परम पिता परमेश्वर का नाम मैं तेरी जिह्वा पर लिख रहा हूं, उसको तू कभी न भूलना, उस के प्रति तू सदा कृतज्ञ होकर उस का भक्ति भरे भावों में विभोर होकर गुण-गान करना, उसका एकाग्रभाव से सदा ध्यान करना..." अब देखने की बात यह है कि क्या मैं उस प्यारे और सब जग से न्यारे परम पिता परमेश्वर का प्रतिदिन, प्रतिदिन में भी प्रति प्रभात और प्रति सायं कृतज्ञता पूर्ण श्रद्धा भक्ति और प्रेम से स्मरण करता हूं या नहीं? उसको सदा सर्वत्र विराजमान समझ कर उसको कृतज्ञ भाव से ओत-प्रोत हुआ हुआ स्तुति; प्रार्थना और उपासना करता हूं या नहीं? यदि नहीं तो अपने जीवन के बीते हुए दिनों पर प्रायश्चित करते हुए भविष्य में मुझे सच्चा आस्तिक बनने का प्रयास करना चाहिए। अब जब मैंने प्यारे और सब दुनिया से न्यारे प्रभु के प्रति कृतज्ञ रहना है, तो फिर भला मैं अपने उस पूज्य पिता के प्रति कब कृतघ्न रह सकता हूं, जिन्होंने कि मेरे सभी संस्कार करके मुझे हर दृष्टि से संस्कृत-सुसंस्कृत, स्वस्थ-समर्थ, विद्या-सुशिक्षा से सुयोग्य और उत्तम बनाने का हार्दिक प्रयास किया है। जिन्होंने कि मेरा जी-जान से पालन-पोषण किया है जिन्होंने स्वयं फटा-पुराना पहना और मुझे नये से नया और सुन्दर से सुन्दर पहनाया है, जिन्होंने कि स्वयं रूखा-सूखा और बासी खाया और मुझे तरो-ताजा खिलाया है इत्यादि। अब मैं हार्दिक प्रयास करूंगा कि मैं अपने ऐसे पूज्य पिता को नित्य-प्रति कृतज्ञ भावना से आप्लावित हुआ,हुआ श्रद्धासे नमन करूं, नमस्कार करूं, नित्य प्रति उनकी आज्ञाओं का पालन करूं, नित्य प्रति उनके जीवन के जो व्रत हैं, जो श्रेष्ठ कार्य है, जो उत्तम-उत्तम गुण कर्म स्वाभाव हैं, उनके अनुरुप आचरण करूं। पुत्र कहला कर मैं सदा उनकी जी-जान से परि-चर्या करूं, सेवा करूं। भविष्य में जब वे वृद्ध हो जायें तो मैं उनका भली भांति पालन पोषण करूं। यदि वे रुग्ण हो जाएं तो मैं उनकी अच्छे

से अच्छे वैद्य-हकीम और डाक्टर से चिकित्सा कराऊं, मैं उनके औषधोपचार की पूर्ण व्यवस्था करूं। और यह सब कुछ करके मैं उनके कष्ट-क्लेशों को दूर कर उनकी आपत्ति विपत्ति को दूर कर उनको सुदीर्घ काल तक स्वस्थ-सशक्त और सुप्रसन्न बनाए रखने का प्रयास करूं, ताकि सुदीर्घकाल तक उनका वरद हस्त मेरे सिरपर बना रहे, और उनका रोम-रोम से निकलने वाला प्यार और आशीर्वाद भी मुझे मिलता रहे।

यदि यह सब कुछ मैं करता रहूंगा तो सच मुच] वेदोपदेश के अनुसार अपने पूज्य पिता का अनुव्रती पुत्र-आज्ञाकारी पुत्र-सच्चा पुत्र कहला सकूंगा।

वैदिक रश्मियाँ

[पुत्रः] मात्रा भवतु सम्मनाः ॥

॥ अथर्व वेद ३-३०-२ ॥

अन्वयार्थः—पुत्र माता से एकमन वाला हो, पुत्र माता के समान मन वाला हो।

पुत्र को चाहिए कि वह अपनी मां के समान मन वाला होवे, वह अपनी मां के साथ एकमन वाला होवे।

वास्तव में पुत्र तभी ऐसा बन सकता है तब कि वह अपनी माँ का सही मूल्याङ्कन करे। सही मूल्याङ्कन भी वह अपनी माँ का तब कर सकता है जबकि वह यह विचार करे, जबकि वह यह सोचे-समझे कि यह मेरी वह माँ है जिसने मुझे जन्म दिया है। जन्म भी यों नही दिया वरन् बड़े तप से दिया है। ९ मास इसने मुझे अपने गर्भ में रखा। गर्भावस्था में इसके सतत रक्तप्रदान करने आदि से ही मैं भीतर ही भीतर पलता-पुस्ता रहा। ज्यों-ज्यों भीतर मैं बढ़ता रहा त्यों-त्यों यह मेरी माँ घटती रही—कमजोर होती रही। फिर भी यह मेरी प्यारी माँ प्रसन्न होती रही। मेरे भीतर वर्तमान रहते हुए यह मेरी माँ निरन्तर वह खाती रही, वह पीती रही जिससे मुझे किसी प्रकार की हानि न हो, मुझे किसी प्रकार का कष्ट न हो। यह वह पढ़ती रही—वह सुनती रही जिससे मेरे संस्कार उत्तम बन सकें, और मेरा आने वाला जीवन उत्तम बन सके। यह यदि कभी राह पर चलती रही या किसी पगडण्डी पर अपना पग बढ़ाती रही तो यह ऐसे सम्भल-२ कर चलती रही अपना पग बढ़ाती रही कि कहीं भीतर से मुझे किसी प्रकार की हानि न हो। फिर प्रसव पीड़ा आदि सहन करके जब इसे यह ज्ञात हुआ कि मेरा जन्म हुआ है, तो सन्तानोत्पत्ति की ध्वनि कानों में पड़ते ही यह इतनी प्रसन्न हो गई कि उस प्रसन्नता में यह अपने सब कष्टों को भूल गई। पुत्रोत्पत्ति के उपरान्त अपने सब कष्टों को भूली हुई यह माँ मन ही मन बड़े सुन्दर-सुन्दर स्वप्न लेने लगी, बड़ी हो उत्तमोत्तम भावनाओं में बहने लगी, और यों सोचने विचारने लगी कि—११ दिन जब मेरे इस प्यारे पुत्र का नामकरण संस्कार होगा तो मैं इसका यह नाम रखूंगी, मैं इसका वह नाम रखूंगी, यह नहीं मैं अपने सास-ससुर से सलाह लेकर, जिठानी-दिरानी और ननन्द से विचार विमर्श करके ही इसका नाम रखूंगी। यह नहीं मेरे इस प्यारे पुत्र में मेरे प्राणप्रिय पति के भी अनेकों अरमान होंगे, उन से भी मैं सलाह

मशवरा करके इस बच्चे का ऐसा सुन्दर नाम रखूंगी, जैसा कि दूसरे का कभी हुआ ही न हो इस शुभ अवसर पर मैं अमुक विद्वान् को बुलाकर उसी से इसका नामकरण संस्कार कराऊंगी इस शुभअवसर पर मैं सब को बड़े प्यार और बड़ी श्रद्धा से बुलाऊंगी। सब बन्धु- बान्धवों के साथ-साथ सभी सामाजिक महानुभावों से भी इस बालक को आशीर्वाद दिलाऊंगी। मैं अपनी कुल-परम्पराओं के अनुकूल ही अपनी और अपने पति की उत्तमोत्तम भावनाओं के अनुरूप ही इस बालक को बहुत अच्छा विद्वान् बनाऊंगी, बहुत बड़ा डाक्टर, इन्जीनियर या बहुत बड़ा धनी-मानी बनाऊंगी, बहुत बड़ा दानी धर्मात्मा और पुण्यात्मा बनाऊंगी। मैं इसको मधु-प्रिय बोलना सिखाऊंगी, स्वस्थ-सुन्दर बनाऊंगी। मेरे वस्त्र चाहे कैसे भी घटिया से घटिया क्यों न हो जाएं पर इसको मैं बढ़िया से बढ़िया वस्त्र पहनाऊंगी मैं स्वयं चाहे खाऊं या न खाऊं पर इसको तो मैं बढ़िया से बढ़िया खिलाऊंगी, बढ़िया से बढ़िया दुग्ध रस आदि पिलाऊंगी। मैं इसका अन्नप्राशन कर्णभेद मुण्डन उपनयन और विवाह आदि कराकर अपने घर को स्वर्ग सा बनाऊंगी। मेरा बेटा प्रभु की अपार कृपा से और मेरे जी जान से किए गए पुरुषार्थ से इतना अच्छा बनेगा कि मेरी और अपने पूज्य पिता आदि की यह जी-जान से सेवा शुश्रूषा करेगा। मेरा बेटा आए-गए का मान-सम्मान करेगा, उनका हृदय से अभिवादन करेगा उनकी भी यह सेवा-शुश्रूषा से यह अपने मां-बाप का नाम उज्ज्वल करेगा। यह बड़ा आस्तिक होगा। प्रभु का नित्य प्रति प्रातः साय बड़ी श्रद्धा से गुण-गान किया करेगा. मेरे साथ बैठ-बैठ कर बड़े ही प्रेम से सन्ध्याहवन किया करेगा। स्कूल-कालेज में यह सदा अपने गुरुओं का मान-सम्मान कर उनकी कृपा से बड़ा ही शिष्ट एवं सुयोग्य बनेगा। यह जब मुझे मां कहकर प्यार से पुकारेगा तो तब मैं फूली नहीं समाऊंगी। यह जब प्यार से बनाए हुए मेरे भोजन आदि को खाएगा तो मैं बड़ी ही तृप्त हूंगी। यह जब अपने हाथों की पहली कमाई लाकर मुझे देगा तो उस दिन प्रभु का बहुत-बहुत धन्यवाद करूंगी 'इत्यादि'।

इस प्रकार जब मैं दिल से सोचूंगा–यह सब कुछ जब मैं मन से विचार करूंगा, मां के हृदय को पढ़ पढ़ कर जब मैं भीतर ही भीतर यह सब अनुभव करूंगा तो तब मैं अपनी इस पूज्या मां अपनी इस अरमानों से भरी हुई मां, अपनी इस प्यारी और सबसे प्यारी मां के साथ समान मन वाला बन सकूंगा, अपनी मां के साथ एक मन वाला बन सकूंगा। समान मन वाला, एक मन वाला बना हुआ-हुआ तब मैं बड़ा ही शिष्ट बड़ा ही प्यारा, बड़ा ही सौम्य, बड़ा ही धार्मिक, बड़ा ही उत्तम, बड़ा ही आस्तिक बड़ा ही दयालु, बड़ा ही विद्वान्, बड़ा ही सेवापरायण, मां की भावनाओं

पर हृदय से फिदा होने वाला, उसके चरणों को स्पर्श कर कर के उस से प्यार और आशीर्वाद पाकर अपने को धन्य धन्य मानने वाला, अपनी अपेक्षा घर में माता पिता को सदा श्रेय देने वाला अपने बड़े छोटे भाई बहिनों को आदर और प्यार देने वाला उन सबके लिए बड़े से बड़ा त्याग तप और बलिदान करने वाला बनूंगा। तब मैं खा के नहीं वरन् उन्हें खिला कर खुश हूंगा, तब मैं लेकर नहीं वरन् उन्हें देकर गद्गद हूंगा, तब मैं उन सब से सेवा करा कर नहीं वरन् घर में सब की सेवा शुश्रूषा करके अपने को निहाल समझूंगा। यह सब कुछ देख सुन कर मेरी मां गद्गद होगी, प्रसन्न और तृप्त होगी, हृदय से मुझे लगा लगा कर प्यारे प्रभु का धन्यवाद ही करेगी और मन ही मन फूली नहीं समायेगी। यह सब इस लिए कि मैं उनकी भावनाओं की एक साक्षात् मूर्ति होऊंगा, उनकी हृदय की तरंगित होने वाला, नाचने वाला एक प्यारा पुत्र बन जाऊंगा। यह सब होने पर ही वेद का उपर्युक्त वाक्य ([पुत्रः] मात्रा भवतु सम्मनाः) सार्थक होगा। और तब मेरी मां "पुत्" नाम उस नरक से तर जायेगी जिस में कि उस का पुत्र बिगड़ जाता है और माँ उस समय उसकी करतूतों को देख देख कर और सुन सुन कर कल्पती रहती है, दुःखी होकर भीतर ही भीतर घुलती रहती है। तब मैं अपनी मां से एक मन हुआ हुआ, मां के समान मन वाला हुआ हुआ अपनी उस प्यारी मां को देख देख कर तृप्त होता रहूँगा और वह मुझे निहार निहार कर गद्गद होती रहेगी। तब मां मुझ जैसे पुत्र को पाकर प्रभु के प्रति कृतज्ञता से विभोर हुई हुई उसके धन्यवाद के गीत गाती रहेगी और मैं अपनी ऐसी उत्तम मां को पा पा कर कृतज्ञता से भरपूर हृदय से प्राणप्रिय प्रभु का धन्यवाद कर रहा हूंगा। यह विचार कर कि भगवान् ने मुझे ऐसी दिव्य माँ दी है। दिल्ली में एक मां प्रतिदिन मन्दिर जाती थी वहां उसको पंखे का अभाव दीखा वह चुप चाप अपने छोटे पुत्र को कहती है कि बेटा मेरा मन करता है कि मैं एक पंखा वहां लगवा दूं। बेटा यद्यपि अपने बड़े भाई की अपेक्षा बहुत निर्धन था, पर था वह मातृभक्त और मां के समान मन वाला, मां से एक मन वाला। अतः झट बोला—माँ! आज ही लग जाएगा कल जब तू मां मन्दिर में जाएगी तो पंखा तुझे वहां लगा हुआ मिलेगा। दूसरे दिन मां मन्दिर गई तो वहां उसने पंखा देखा तो वह बड़ी प्रसन्न हुई। पर घर आकर वह बेटे से बोली कि—"बेटा मैंने यह पंखा नहीं सोचा था, फलां सोचा था।" इस पर पुत्र बोला—"माँ जी! चिन्ता मत करो, कल आपको वही लगा हुआ मिलेगा। दूसरे दिन मां मन्दिर गई तो मन ही मन बेटे को आशीर्वाद देते हुए ऐसे अच्छे पुत्र के लिए प्रभु को धन्यवाद दिया और घर आकर बेटे को बहुत प्यार किया और रोम रोम से उसको आशीर्वाद दिया। मां जब वेदानुसार अपने पुत्र को अपने समान मन वाला, अपने साथ एक मन वाला देखती सुनती है तब वह कितनी प्रसन्न खुश होती है, उसके हृदय से बच्चे के लिए क्या-क्या निकलता है यह वही जानती है। तभी वेद ने कहा कि 'पुत्र को चाहिए कि वह मां के साथ एक मन वाला हो।'

❀ ❀ ❀

सृष्टि और उसकी उत्पत्ति

डा० रामेश्वरदयाल गुप्त

सृष्टि उत्पत्ति

प्रस्तुत लेख में हमें अपने वाङ्मय में वर्णित वैज्ञानिक तथ्य दिखाना अभीष्ट है। इस संसार की पहेली को ही तो विज्ञान उजागर करता है। प्रकृति के रहस्यों की खोज ही को तो वैज्ञानिक आविष्कार कहते हैं। अतः प्रकृति के सूक्ष्म और स्थूल तत्त्वों की खोज करने से पूर्व यह आवश्यक है कि इस पर मत स्थापित किया जावे कि यह सृष्टि है क्या? कैसे बनी और कब बनी है? इन्हीं प्रश्नों का उत्तर दर्शनशास्त्र में मिलता है। सृष्टि क्यों बनी है, इसका उत्तर धर्मशास्त्र एवं एवं नीतिशास्त्र में होता है।

हमारे तत्त्ववेत्ता इस बात पर निश्चिन्त थे कि कुछ बनता नहीं है, केवल रूपान्तर होता है। अतः इस सृष्टि के बनने का कोई प्रश्न नहीं है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

डाल्टन की अटोमिक थ्योरी भी यही कहती है कि पदार्थ का नाश नहीं होता। यदि पदार्थ अनन्त हैं तो अनादि भी होना चाहिए। पर अनादि सृष्टि में परिवर्तन अर्थात् उत्थान-पतन सृजन-संहार के जोड़े दीखते हैं। इनका कारण गतिशीलता और गतिहीनता ही है। गतिशीलता और गतिहीनता संकेत करती है कि आंशिक निर्माण और आंशिक ध्वंस होता ही है। इसी को प्रवाह से अनादि कहते हैं। नहर का जल तो आगे आदि हित आगे से आता चला आ रहा है, पर गति मन्द होने पर उसको ठोकर बनाते हैं जहां ऊंचाई से नीचे गिराकर उसमें पुनः वेग भरते हैं। अर्थात् प्रकृति, विकृति रूप हो संसार बनकर सामने आती है और नियत समय तक आदि गति (चाबी) से निष्पंदन करती है और चाबी समाप्त होने पर वापिस परमाणु रूप में लौट जाती है। इसी को प्रलय कहते हैं। पर सृजन और प्रलय का यह क्रम अनादि और अनन्त है। हर सृजन हर नियन्त्रण द्वारा यह यथा पूर्व (पूर्व की भांति) रच दी जाती है।

क्या यह रचना आकस्मिक हो जाती है जैसा कि पाश्चात्य वैज्ञानिक मानते हैं? आकस्मिक की परिभाषा है एक प्रकार का सकारण घटनाओं का दूसरी प्रकार की सकारण घटनाओं के सम्पर्क में आना। अतः आकस्मिक स्थिति सकारण स्थिति के बाद और उसका फलमात्र है। फिर सृष्टि में सर्वत्र नियम, बुद्धि और प्रयोजन है। हाइड्रोजन आकस्मिक रूप से आक्सीजन से मिल सकती है पर उसके दो अणु आक्सीजन एक से ही मिलें और उष्णता पाकर मिलें तथा चन्द्रमा पर एक कण पानी भी न बने जहां उस-

के पीने वाला कोई नहीं है। तथा पृथ्वी पर सतत बने। यह ज्ञान और प्रयोजन आकस्मिक नहीं है।

कभी-कभी कतिपय विचारक कहते हैं कि यह सब दृश्यमान जगत है ही नहीं। सब स्वप्नवत् और काल्पनिक है। इस पुस्तक की परिधि में इस विचारधारा की ऊहापोह नहीं आती। यह क्षेत्र तो दर्शनशास्त्र का है।

प्रकृति

जगत् की वास्तविकता विकृति

दर्शन शक ही बताता है— दृश्य और द्रष्टा दृश्य ही प्रकृति है। यह काल्पनिक क्यों कर है। डा० स्वामी सत्यप्रकाश ने तो एक स्थल पर लिखा है— जो लोग संसार को स्वप्नवत् या काल्पनिक बताते हैं, उनमें से कोई यह तो नहीं कहता है कि संसार है ही नहीं। (१) कुछ कहते हैं कि संसार परिवर्तनशील है इसलिये अवास्तविक है (२) कि यह संसार काल्पनिक है क्योंकि इसमें वास्तविक सुख नहीं है। (३) कि यह वास्तविक नहीं है क्योंकि इसमें वे वास्तविक सिद्धान्त नहीं पाते। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति विरक्त होकर ही प्राप्त हो सकती है।

संसार में छोटे सिद्धान्तों व पद्धतियों के अन्दर एक वृहत् सिद्धान्त पिरोया हुआ है। तो इसके यह अर्थ नहीं है कि छोटा सिद्धान्त है ही नहीं। इसमें तो वे सब उवयनिष्ठ है। न ही ग्राम सिद्धान्त एक पद्धति और घटना से इन्कार करता है यदि घटना स्वप्नवत् या अवास्तविक है तो उसमें निहित मूल कदापि भ्रामक और अवास्तविक नहीं है।

यदि जो संसार है, और बार-बार सृजन और प्रलय के चक्र में आता है तो उसको चालू सत्र की सृजना कैसे और कब हुई इस पर विचार करना आवश्यक है। विज्ञान के अनेकों सिद्धान्तों का पृष्ठ लिखना अनुपयुक्त न होगा।

सृष्टि रचना का क्रम

नासदीय सूक्त

इस विषय में ऋग्वेद का नासदीय सूक्त परम विख्यात है इसके १० वें मंडल के १२६ वें सूक्त के ७ मन्त्रों में यह साधारण प्रतिज्ञा प्रश्नोत्तर रूप में हल की गई है। इसे थोड़ा हम कुछ बदल कर पेश करते हैं। पहले ६ वाँ तथा ७ वाँ मन्त्र देते हैं।

को अद्धा वेद क इह प्रावोचत्कुत आजाताकुतइयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत् आबभूव॥
(ऋ० १०।१२६।६)

(अद्धा:, क: वेद) अब यं कौन जानता है (कः, इह, प्रवोचत्) कौन यहां कह सकता है कि (यह सृष्टि) (कुतः,आजाता) कहां से आई (कुतः,

इयं, विसृष्टिः) और कहां से यह विविध प्रकार की सृष्टि हुई। (ग्रस्य, विसर्जनेन) इसकी उत्पत्ति के (अर्वाक्) बाद (देवा.) देव उत्पन्न हुए हैं (अथ, कः, वेद) इसलिए कौन जानता है कि (यतः आबभूव) जिससे यह जगत बना।

अर्थात् सृष्टि बनने का आंखों देखा ज्ञान मनुष्यों को नहीं हो सकता, क्योंकि सब सृष्टि उत्पन्न हो जाने के बाद उत्पन्न हुए हैं।

इय विसृष्टियत् आबभूव यदिवादधे यदि
वा न।
योग्रस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अंगवेद
यदि वा न वेद ।।
(ऋग्वेद १०।१२६।७

(यतः, इयं, विसृष्टिः) जिससे यह विविध प्रकार की सृष्टि (आबभूव) उत्पन्न हुई (यदि, वा, दधे, यदि, वा, न) वह उससे धारण करता है या नहीं। (परमे, व्योमन्) असीम आकाश में (अस्य, यः, अध्यक्षः) इसका जो अधिष्ठाता है (सः, अंग वेद, यदि, वा, न) वही जानता होगा तो जानता होगा।

यहां स्पष्ट है कि यह स्थापना बुद्धि-जन्य है। प्रत्यक्ष पर आधारित नहीं है। अब प्रथम मन्त्र देते हैं जिसमें प्रश्न का उत्तर है—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो
व्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्
गहनं गभीरम् ।।
(ऋग्वेद १०।१२६।१)

(तदानीं) उस समय (प्रलयावस्था मे) (न, असत, आसीत्) न असत् = स्थूल जगत था। (नः, सत्, आसीत्) न सत् = सूक्ष्म जगत = सूक्ष्म भूत था। (अजः न आसोत्) न अन्तरिक्ष था (तत्, परः, व्योमा) वह जो आकाश है, नहीं था। (उस समय) (कुह) कहां (किम्) क्या (आवरीवः) ढका हुआ था ? (कस्य, शर्मन्) जिसके आश्रय (सुख) के लिए ? (गहनं, गम्भीरम्) अगाध और गहन (अंभः) अंभ = पञ्चभूतों का समीपवर्ती कारण (किम्) कहां था।

भावार्थ—कारण प्रकृति के सिवा, उसका कोई भी विकृत रूप महाप्रलयावस्था में नहीं था। पञ्चभूतों के प्रादुर्भूत होने से पहले जो उनका निकटवर्ती कारण रूप का है उसे अंभ या जल कहते हैं।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न
आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधायतदेकं तस्माद्धान्यन्न
परः किंचनास ।।

(ऋ० १०।१२६।२)

(तर्हि) उस समय (मृत्युः, न, आसीत्) मृत्यु नहीं था अमृतं, न) न अमृत (था)। (रात्र्याः, अह्नः) रात और दिन का (प्रकेतः, न, आसीत्) ज्ञान (चिन्ह) नहीं था। (तत् एकम्) वह एक स्वधया = प्रकृति के साथ (अ-वातं) बिना वायु के (आनीत्) प्राणरूप में स्फूर्तिमा था।

(तस्मात्, अन्यत्) उससे भिन्न (ह) निश्चय से (किंचन, परः, न, ग्रास) कुछ भी नहीं था।

भावार्थ—एकम् शब्द पुरुष वाचक है। पुरुष में आत्मा और परमात्मा दोनों समाविष्ट हैं। सायणाचार्य ने स्वधा के अर्थ माया किये हैं। माया प्रकृति को ही कहते हैं। (मायातु प्रकृति-विद्धि। श्वेताश्वेतरोप=निषद्) इसलिए सुधा शब्द प्रकृति वाचक है। मन्त्र में भाव यह है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति के सिवा कार्य जगत कुछ भी नहीं था।

तमासीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्म-हिना जायतैकं॥
[ऋ० १०।१२६।३]

अग्रे=जगदुत्पत्ति से पहले प्रलयावस्था में (तमसा गूढं) अन्धकार में व्यापी हुई (तमः, आसीत्) प्रकृति थी (इदं सर्वं) यह सब (जगत्) (अप्रकेतम्) चिन्ह रहित (सलिलं) जल=पञ्च-भूतों के निकटवर्ती कारण रूप में था। (यत्) जो (आभु) प्रकृति, तुच्छयेन; अपिहितं, आसीत्) शून्यता=कार्य रहितता से ढकी हुई थी (तत्) वह (तपसः महिना) तप=ईक्षण (ईश्वर की जगदुपत्ति करने की स्वाभाविक दिव्य इच्छा) के महत्व से (एकं) प्रकृति (जायत्) विकृत (=कार्य्य रूप में प्रकट) हुई।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतोबन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥
[ऋ० १०।१२६।४]

(अग्रे) मन आदि अन्तःकरणों का कारण (यत्, प्रथमं, आसीत्) जो पहले (प्रकृति रुप में) था (तत्, अधि) उस पर (कामः) ईक्षण (समवर्तत) हुआ अर्थात् दिव्य क्षण ने काम करके उस गति शून्य प्रकृति में गति का संचार किया। (कवयः) ज्ञानी पुरुषों ने (हृदि) हृदय में (मनीषा) बुद्धि से (प्रतीष्य) ढूंढ=विचार कर (निर्-अविन्दन्) जान लिया कि (असीत्) अव्यक्त=कारण रूप प्रकृति में (सतः) व्यक्त=कार्य्य रूप प्रकृति का (बन्धु) भाईपन है।

भावार्थ—प्रकृति में ईक्षण अर्थात् ईश्वर प्रदत्त गति से, जिसे वैज्ञानिक गतिशक्ति (Energy) कहते हैं, आन्दोलन होकर वह कार्य्य रूप में परिवर्तित हो जाया करती है, इस सिद्धांत को बुद्धिमान् जानते हैं। मन्त्रान्त में कारण प्रकृति और कार्य्य जगत में भाई होने का सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है। प्रकृति तो साक्षात् नित्य है ही परन्तु कार्य्य जगत् भी प्रवाह से नित्य है। इस प्रकार दोनों के नित्य होने से, भाई-भाई ही का सम्बन्ध हो सकता था।

क्रमशः...

प्रभु का गुणगान करो

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥
[ऋ० ८.९८ १; साम० १०२५, अथर्व० २०.६२.५]

अन्वयः—विप्राय बृहते ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे इन्द्राय बृहत् साम गायत ।

अन्वयार्थः—(विप्राय) मेधावी (बृहते) महान् (ब्रह्म कृते) वेद कर्त्ता (विपश्चिते) श्रेष्ठ ज्ञानी (पनस्यवे) व्यवहारोपदेष्टा एवं सबसे स्तोतव्य (इन्द्राय बृहत् साम गायत) अज्ञान निवारक, उपद्रव-शामक परमेश्वर के लिये बृहत् साम का गान गाओ ।

व्याख्या—हे उपासकों ! तुम (इन्द्राय बृहत् साम गायत) इन्द्र-परमेश्वर की महान् साम मंत्रों से स्तुति करो अथवा तुम इन्द्र-परमेश्वर को बृहत् नामक साम-संगीत से स्तुति करो ।

हे उपासकों ! तुम उन साम मन्त्रों से इन्द्र का स्तवन करो, परमेश्वर का गुणगान करो जो तुम्हारी हबड़-सबड़, व्यर्थ की दौड़-धूप, आपा-धापी रूप कर्म को समाप्त कर तुम को चैन से बिठा सके और इस बात के सोचने के लिए प्रेरित कर सकें कि आखिर यह सब दौड़-धूप किसलिए, यह व्यर्थ का आडम्बर किस लिए ?

यह सब कुछ जो सोचने समझने के लिए प्रेरित करें और जीवन में व्यर्थ की भाग-दौड़ रूप कर्म को समाप्त कर प्रभु की उपासना करने के लिए जो तुम्हें चैन से बिठा सकें, परमेश्वर में समाधिस्थ करने के लिए तैयार कर सकें, पात्र बना सकें, उन साम मन्त्रों का गान करो ।

फिर तुम उन सामों का—उन साम मन्त्रों का गान करो, जो तुम्हारे भीतर ही भीतर सान्त्वना दे सकें, अन्दर ही अन्दर तुम्हारे अघीर हृदयों को धीर बंधा सकें, तुम्हारे घावों पर मर्हम का कामकर सकें वैसे भी प्रभु की जिन स्तोत्रों से, जिनमन्त्रों से, जिन गीतों से हम स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं उनमे हम इन्द्र-परमेश्वर को ना कोई लाभ है नहीं और न ही वह इन सब की अपने लिए अपेक्षा ही रखता है, अन्ततोगत्वा इन सबसे यदि लाभ होता है तो वह इस जीव को ही होता

---

१. पनस्युः—पनस्यवे "पण व्यवहारे स्तुतौ च ।
२. साम—"षो अन्तकर्मणि ।"
३. "साम सान्त्वने ।"

है। क्योंकि उस इन्द्र-परमेश्वर का गुणगान करते-२ यह भी धीरे-धीरे अनिन्द्र से इन्द्र अर्थात् इन्द्रियों के दास से इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है। इतना ही नहीं बल्कि यह उस परम धीर परमेश्वर के सम्पर्क से अधीर से धीर, अशान्त से शान्त, अतृप्त से तृप्त, मूढ़ से अमूढ़, विकल से अविकल, दुःखी से सुखी, सुखी से आनन्दित, क्षुद्र हृदय से विशाल हृदय, अनुदार हृदय से उदार हृदय, हीन से अहीन, अनुत्कृष्ट से उत्कृष्ट और क्षुद्र से महान् आदि बन जाता है। फिर अपने जीवन में किसी प्रकार की भी विपत्ति आने पर इसको किसी के सामने अपना रोना नहीं पड़ता, किसी के सामने अपना दुःखड़ा नहीं सुनाना पड़ता, किसी से सान्त्वना की भिक्षा नहीं मांगनी पड़ती, किसी से ढाढ़स नहीं लेनी पड़ती। यह तो तब फिर औरों के आंसू पोंछने वाला बन जाता है, औरों का दुःखड़ा सुनने वाला बन जाता है, औरों को सांत्वना देने वाला बन जाता है, औरों को धीर बंधाने वाला बन जाता है, औरों का ढाढ़स देने वाला बन जाता है, औरों के घावों पर मर्हम लगाने वाला बन जाता है। उस समय फिर इसको अपने लिए किसी का आश्रय नहीं लेना पड़ता बल्कि यह स्वयं प्रभु के आश्रित रहता हुआ औरों का आश्रय बन जाता है, औरों को सहारा बन जाता है। उस समय इस की वाणी के श्रवण से मनुष्य इतने अधिक तृप्त होते हैं कि जितने संसार के बहुविध रसों से भी तृप्त नहीं होते। इसको देखकर, इसके दर्शन पाकर मनुष्य इतने तृप्त होते हैं कि जितने किसी भी और पदार्थ को देखकर या खा कर तृप्त नहीं होते। इसके नेत्रों की पवित्रता और आचरण की दिव्यता सहज ही तब सब को अपना अन्तरंग बना लेती है। इसका संयोग वा वा सम्पर्क सबके लिए सुखकर वा तृप्ति कर होता है और वियोग दुःखकर होता है विह्वल करने वाला होता है। इसकी मधुर स्मृति सम्पर्क में आये हुए व्यक्तियों के हृदयों में सदा बनी रहती है। अतः ऐसे उस इन्द्र का साम गीतों से या भक्तिरस से परिपूर्ण गीतों से तुम गुणगान करो।

हे मानवो! तुम उस इन्द्र की अन्तःकरण से जब स्तुति-प्रार्थना और उपासना करोगे तो वह तुम अनिन्द्रों को–इन्द्रियों के दासों को इन्द्र अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी बना कर खड़ा कर देगा। जाओ तो सही तुम उस इन्द्र की शरण में और देखो जरा कि वह तुम्हें क्या बनाता है! जाओ तो सही जरा उसके द्वार पर और देखो कि वह तुम्हें क्या देता है! तुम देखना तुम्हारी उजड़ी आन्तरिक नगरी को वह बसा देगा, तुम्हारी चित्तरूपी भूमि को वह हरा-भरा कर देगा, अविद्यान्धकार से आवृत्त तुम्हारे हृदय को वह अपने देदीप्यमान प्रकाश से प्रकाशमान बना देगा, तुम्हारी खाली झोली को वह सर्वविध ऐश्वर्यों से भर देगा और तुम्हें सब प्रकार से

निहाल कर देगा। उसका श्रद्धाभक्ति से ध्यान करने पर जब तुम आंख खोलकर देखोगे तो तुम्हारे द्वार पर वह तुम्हें खड़ा हुआ मिलेगा जिसके द्वार पर रोटी की रोटी पाने के लिए तुम खड़े रहा करते थे। जिसकी कभी प्रतीक्षा करते रहते थे कि वह तुम्हें आंख उठाकर कृपा भरी दृष्टि से निहारे, आज वह तुम्हें अपने दर पर इस प्रतीक्षा में खड़ा हुआ मिलेगा कि तुम उसको करुणाभरी दृष्टि से देखो। तुम्हें जो कभी धीर बंधाता था, सान्त्वना देता था, वह आज तुम्हारे दर पर तुम से धैर्य और सान्त्वना प्राप्त करने के लिए तुम्हें खड़ा हुआ मिलेगा। अतः 'जरा आ. शरण में तू ओ३म्, की तब वह इन्द्र-परमैश्वर्य-वान् प्रभु तुम अनिन्द्रों को-तुम अनैश्वर्यशाली उपासकों को इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यशाली बना देगा। और फिर केवल सांसारिक ऐश्वर्यों से ही तुम्हारी झोली नहीं भर देगा प्रत्युत परमैश्वर्यरूप अमरत्व से भी तुम्हें निहाल कर देगा।

हे साधको! हे उपासको! तुम श्रद्धा और विश्वास से उस इन्द्र का गुणगान करो, उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करो। ऐसा करते-करते तुम्हें ऐसा प्रतीत होगा कि वह इन्द्र तुम्हें अपने में ध्यानावस्थित देख कर, समाधिस्थ जान कर चुपके-चुपके (इन्द्रः-इदं द्रणातीति वा) तुम्हारे भवबन्धनों को काटता रहेगा। इस प्रकार तुम्हारी अटूट श्रद्धा, स्वविश्वास एवं दिदृक्षा-साक्षात्कार करने की तीव्र तड़प से निरन्तर आवर्जित हुआ-हुआ इन्द्र जब एक-एक कर के तुम्हारे सारे भव-बन्धन काट देगा तो तब तुम्हें आँखें खोलने पर ऐसा लगेगा कि जैसे तुम जीवन मुक्त हो गये हो और सहसा ही तुम्हारे मुख से यह वाक्य प्रस्फुटित हो जाएगा कि—"न कोई है अपना, न कोई पराया, सभी हैं अपने, सभी हैं पराये। तब तुम्हारा राग–प्यार भी अनोखा होगा। तब तुम अबाध गति से निरन्तर आगे ही बढ़ते रहोगे। तब उस इन्द्र के पावन सम्पर्क से (इन्द्रः इदं दर्शनादिति वा) तुम भी इस संसार के भोक्ता न रहकर द्रष्टा ही बन जाओगे। फिर जैसे वह इन्द्र (इदं ददातीति वा) यह सब कुछ सब को दे देता और स्वयं निर्लेप रहता है, वैसे तुम भी उसके सम्पर्क के प्रभाव से अपना सर्वस्व दूसरों को बिना भेदभाव के देने लगोगे और स्वयं निर्लेप भाव से विचरने लगोगे इत्यादि।

इसप्रकार उस इन्द्र-परमेश्वर की सुदीर्घ-काल तक निरन्तर, श्रद्धा पूर्वक उपासना एवं गुणगान करते रहने से उस इन्द्र जगत सम्राट हृदय सम्राट, प्रभु देव को तो कुछ लाभ होगा नहीं, हां तुम्हारी अंधेरी कुटिया उस प्रकाश-स्वरूप प्रभु के प्रकाश से अवश्य जगमगा उठेगी। अतः गाओ उसे, जी भर कर गाओ और ऐसे गाओ कि गाते-गाते विभोर हो जाओ। उसका ध्यान करो, ऐसे कि उसमें तल्लीन हो जाओ, समाधिस्थ हो जाओ। विश्वपति के ध्यान में जिसने लगाई है लगन, क्यों न हो उसको शान्ति क्यों न हो उसका मन मगन।

उपर्युक्त मन्त्र में इन्द्र शब्द के प्रत्येक विशेषण पर यदि विचार करें तो इन्द्र परमेश्वर की महिमा का हमें भली-भाँति ज्ञान हो जाएगा कि वह कितना महान् है कितनी कृपा उसने हम पर कर रखी है इत्यादि।

इन्द्र का अर्थ है अन्धकार का निवारण करने वाला। अब यदि इन्द्र का अर्थ अन्धकार का वारण करने वाला है तो फिर सूर्य भी तो अन्धकार का निवारण कर सर्वत्र प्रकाश कर देता है, फिर सूर्य को भी इन्द्र कहते ही हैं, तब सूर्य और इन्द्र में क्या अन्तर रहा ?

इसमें सन्देह नहीं कि सूर्य भी अन्धकार को दूर करता है और परमात्मा भी। परन्तु एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि यह इन्द्र सूर्य केवल हमारे इस बाह्य जगत् का अन्धकार दूर कर सकता है आन्तरिक जगत का नहीं, परन्तु उस इन्द्र परमेश्वर की यह विशेषता है कि वह जहां बाह्य संसार के अन्धकार को हटा सकता है वहां हमारे भीतरी जगत का अन्धकार भी वह हर सकता है। फिर अगला विशेषण तो और भी बड़ा सुन्दर है, वह यह कि यह इन्द्र-सूर्य तो जड़ है पर वह चेतन है। उसका विशेषण यहां दिया है, 'विप्राय'[1] वह विप्र है, मेधावी है, ज्ञानी है, ज्ञान का अनुपम भण्डार है, ज्ञान का वह अद्वितीय स्रोत है।

यदि उसको विप्र ज्ञानी मेधावी कहा गया है तो इस संसार में एक से एक बढ़ कर विप्र-ज्ञानी मेधावी भी उपस्थित हैं, फिर उसमें क्या विशेषता है ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि जगत में एक से एक बढ़कर विप्र-ज्ञानी-मेधावी-बुद्धिमान् है परन्तु यहाँ इन्द्र का एक ऐसा विशेषण[2] 'बृहते' दिया गया है जिसका कि अर्थ है—'महान्।' अब विप्र अनेक हैं, ज्ञानी अनेक हैं, विद्वान् अनेक हैं, मेधावी अनेक हैं, बुद्धिमान् अनेक हैं, परन्तु इन सब में से जो महान्, जो अद्वितीय है वही इन्द्र कहलाता है। ये सभी ज्ञानी विद्वान् मेधावी बुद्धिमान् जन ब्रह्म-ज्ञान-वेद ज्ञान का प्रचार करते हैं उसका स्थान-२ पर प्रकाश कर सबका सुधार करते हैं। इस दृष्टि से ये सब महान् हैं, परन्तु इन सबसे वह इन्द्र इसीलिए भी महान् है कि वह [3]'ब्रह्मकृत' है, वेदकर्त्ता है अर्थात् जगत् में वेदज्ञान का-ज्ञानमात्र का उद्भव उसी से होता है। वह इसलिए की मनुष्य इस जगत में आकर उस ज्ञान को पाकर ऐसा जीवन व्यतीत करे जिससे कि वह अभ्युदय अर्थात् इस संसार में सुख-सौभाग्य से सम्पन्न जीवन प्राप्त कर सके। वह इन्द्र 'ब्रह्मकृत' है इसका प्रतिपादन अन्यत्र ऋग्वेद १.३७.४ में भी मिलता है 'देवत्तं ब्रह्म गायत' अर्थात् देव प्रदत्त प्रभु प्रदत्त ब्रह्मवेद का गान करो—स्वाध्याय करो।

उसने ऐसा दिव्यज्ञान कैसे दिया, यदि कोई यह पूछे तो मन्त्र में उसके लिए 'विपश्चिते' विपश्चित शब्द आया हुआ है। वह विपश्चित अर्थात महान् ज्ञानी है। उसका ज्ञान नित्य उसमें बना रहता है। सृष्टि के आदि में उस ज्ञान का

---

१ विप्र इति मेधावी नाम तस्मै विप्राय।

२. बृहते बृहदिति महतो नामधेयम्। तस्मै बृहते इन्द्राय।

३. ब्रह्मकृते–ब्रह्मकरोतीति ब्रह्मकृत् तस्मै ब्रह्मकृते इन्द्राय।

वह अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा ऋषियों के हृदय में प्रकाश करता है इससे 'ब्रह्मकृत' कहा गया है। उस ब्रह्मवेद के सम्बन्ध में तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है—"अनन्ता वै वेदाः" यह वेद अनन्त ज्ञानों का भण्डार है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के शब्दों में 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" ऐसे उस दिव्य ज्ञान वेद का स्वाध्याय करने से ज्ञात होता है कि इस दिव्य पावन ज्ञान का उत्पादक कोई अद्वितीय महान् ज्ञानी है। अतः यहां उस परमेश्वर को विपश्चित् कहा गया है। विपश्चित् शब्द का एक दूसरा भी बहुत सुन्दर अर्थ है, वह यह 'वपश्चित' विपः—बुद्धि को सम्यक् ज्ञान देकर चेताने वाला, सदा जागरूक करने वाला, सदा सावधान करने वाला। वह विपश्चित इन्द्र जहां बाहर से हमें वेद ज्ञान प्रदान कर के संसार में दुर्गुण दुर्व्यसन रूपी गर्तों में गिरने से बचाने के लिए सावधान करता रहता है वहीं भीतर से भी अन्तर्यामी रूप में विराजमान् होकर अपनी सत्प्रेरणाओं से हमें सावधान करता रहता है। ऐसा इन्द्र परमेश्वर भला किसके लिए पूजनीय नहीं होगा ?

यदि कोई यह पूछे कि यह ब्रह्मवेद ज्ञान किस प्रयोजन के लिए उस इन्द्र परमेश्वर ने मनुष्यों को प्रदान किया है, तो इसका उत्तर यह है कि वह 'पनस्युः' है। वह इन्द्र परमेश्वर यह चाहता है कि सब मनुष्य परस्पर में उत्तम व्यवहार करें जिससे कि उनको स्थान-स्थान पर स्तुति हो, प्रशंसा हो। वह पनस्युः जगत सम्राट हृदय सम्राट इन्द्र सभी मनुष्यों कोलोक व्यवहार में निपुण देखना चाहता है इसलिए उसने वेद ज्ञान दिया है। वह जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में भी भीतर से हमें सत्प्रेरणा देता रहता है ताकि कोई भी व्यवहार हमारा ऐसा न हो जो हमें दूसरों की दृष्टि में नीचे गिराने वाला हो। हमारा प्रत्येक व्यवहार चाहे वह गुरु-शिष्य सम्बन्धी हो, स्वामी सेवक सम्बन्धी हो, पिता-पुत्र सम्बन्धी हो, माता-पुत्र सम्बन्धी हो, क्रेता-विक्रेता सम्बन्धी हो, भाई-भाई सम्बंधी हो, बहन-बहन सम्बधी हो, भाई-बहिन सम्बंधी हो, पति-पत्नी सम्बंधी हो, लेन-देन सम्बंधी हो, रहन-सहन सम्बंधी हो, खान-पान सम्बंधी हो, सोने-जागने सम्बबंधी हो, पहनने ओढ़ने सम्बंधी हो, आने-जाने सम्बंधी हो, बैठने-उठने सम्बंधी हो, वह सब प्रकार से स्तुत्य हो, सब तरह से प्रशंसनीय हो, हर दृष्टि से सुन्दर हो, सदा दूसरों के हृदयों में हमें चिरस्थाई बनाने वाला हो, सदा दूसरों के स्नेह और सम्मान का हमें पात्र बनाने वाला हो, इसी भाव को ध्यान में रख कर वह पनस्यु वह सद्व्यवहारोपदेष्टा प्रभु देव और उसके द्वारा स्थान-स्थार पर हमारी

पनस्युः—"पण व्यवहारे स्तुतौ च।"

प्रशंसा एवं यश चाहने वाला इन्द्र जहां हमें वेद के अनुपम ज्ञान के माध्यम से दिव्य उपदेश देता है, वहां अन्तःकरण में विराजमान रहकर भी सदा हमें सन्मार्ग दिखाता रहता है।

इतना ही नहीं वह 'पनस्यु' इंद्र हमें जहां व्यवहार में निपुण देखना चाहता है वहां हमें 'यथार्थ गुणकथनं स्तुति' प्रत्येक पदार्थ के यथार्थ गुण कथन करने का ज्ञान और सद्बुद्धि भी देता है। पदार्थों के यथार्थ ज्ञान और यथार्थ गुण कथन से हमारी उन पदार्थों में प्रीति बढ़ेगी और तब उनका वास्तविक लाभ हमें प्राप्त हो सकेगा। लोक में जैसे प्रत्येक पदार्थ के वास्तविक गुण जानने और कहने से उससे हम वैसा ही स्वास्थ्य आदि यथोचित लाभ उठा सकेंगे वैसे ही प्रभु की यथार्थ स्तुति, प्रभु का यथार्थ गुण कथन करने से भी हम वैसा ही लाभ उठा सकेंगे। अर्थात् उसको न्यायकारी समझ और कहकर स्वयं भी न्यायकारी बनेंगे, उसकी उदारता को देखकर स्वयं भी हृदय से उदार बनेंगे। इस प्रकार धीरे-धीरे परमेश्वर की इस स्तुति प्रार्थना उपासना से हम अपने भीतर वह पात्रता उत्पन्न कर लेंगे जिसे देखकर प्रभु हमें सब प्रकार से निहाल कर देगा।

इन्हीं हेतुओं से वेद कहता है कि हे उपासको ! हे साधको ! (पनस्यवे) उस सद्व्यवहारोपदेष्टा और इसके कारण सबके लिए स्तुत्य (विपश्चिते) बुद्धि को सदा जागरूक-सावधान करने वाले महान् ज्ञानी (ब्रह्मकृते) वेदकर्त्ता वेद का सृष्टि के आदि में ज्ञान प्रदान करने वाले (बृहते) महान् (विप्राय) मेधावी बुद्धिमान् (इंद्राय) इन्द्र परमेश्वर का (बृहत् साम गायत) बृहत् साम संगीतों से गुणगान करो, अथवा ऐसे शांति एवं आनंदप्रद स्तोत्रों से, गीतों से ऐसा गुणगान करो कि जिसमें तुम सहज ही उसके हो जाओ और वह तुम्हारा हो जाए।

गुरुकुल कांगड़ी वि. वि. समाचार

(अगस्त मास)

इतिहास विभाग

अगस्त माह के प्रथम सप्ताह में स्वामी सत्यप्रकाशानन्द जी ने (भूतपूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रसायन विभाग, प्रयाग वि.वि.) संग्रहालय भवन में प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग में आयोजित एक व्याख्यान मालाके अन्तर्गत 'वेदों में विहित ज्ञान' विषय पर एक सारगर्भित वार्ता दी। स्वामी जी ने वेदों में विहित दो प्रकार के ज्ञान की ओर ध्यान आकर्षित कराया। उनका मत था कि वेदों में कुछ तो शाश्वत् सत्य बातें हैं, जिन्हें हम त्याग देंगे तो समाज का अत्यधिक अपकार होगा। दूसरी ओर वेद में कुछ ऐसे शाश्वत् तथ्य हैं, जो बीज रूप में विद्यमान हैं। यदि हम व्याख्या करके उनको उजागर नहीं करते तो यह भी हमारी भूल होगी। स्वामी जी की वार्ता बहुत ही ज्ञानप्रद और प्रेरणादायक रही। इतिहास के विद्यार्थियों को उपर्युक्त वार्ता से बड़ा लाभ हुआ। सभा का संयोजन श्री डा० विनोदचन्द्र सिन्हा जी ने किया। विभाग के सभी उपाध्याय सभा में उपस्थित थे।

खेल समाचार

आठ अगस्त, १९८२ को दिल्ली में पालिया-मेन्ट्री फोरम फार स्पोर्ट्स द्वारा आयोजित नेशनल कान्फ्रेन्स आन स्पोर्ट्स में कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा जी एवं क्रीड़ाध्यक्ष श्री ओमप्रकाश मिश्रा (अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग) ने भाग लिया। कुलपति जी ने अपने भाषण में विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा खेलों के प्रति अपनाए जा रहे उपेक्षित दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए यह सुझाव दियाकि स्पोर्ट्स विभाग में भी प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरार के स्तर के ग्रेड प्रदान किए जायें। कुलपति जी के हिन्दी भाषण को समस्त उपस्थित व्यक्तियों ने मुक्त कण्ठ से सराहना की।

पुण्य-भूमि सम्बन्धी समाचार

नौ अगस्त, १९८२ को पुण्य-भूमि कांगड़ी ग्राम में आचार्य एवं प्रो० वाइस चांसलर श्री रामप्रसाद जी वेदालंकार की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा के मुख्य अतिथि बिजनौर के जिलाधीश थे, जिन्होंने अपने बड़े तथ्यात्मक विचार भी व्यक्त किए। आचार्य जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में ग्रामवासियों के कल्याण के अनेक सुझावों पर प्रकाश डाला तथा जिलाधीश के सहयोग की सराहना भी की। इस अवसर पर आचार्य एवं जिलाधीश महोदय ने वृक्षारोपण भी किया।

वृक्षारोप

अगस्त मास में हो प्रधानमन्त्री श्रीमती

इन्दिरा गांधी द्वारा किये गये राष्ट्रीय आह्वान के अन्तर्गत कुलपति जी की प्रेरणा से श्री डाक्टर कश्मीरसिंह भिंडर (प्राध्यापक, इतिहास विभाग) द्वारा एक हजार वृक्षों का रोपण किया गया। इस कार्य में श्री करतारसिंह ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया।

संस्कृत दिवस

१३ अगस्त, १९८२ में श्री डा. निगम शर्मा जी, (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग) के नेतृत्व में, संयोजक श्री वेदप्रकाश (प्राध्यापक,संस्कृतविभाग) ने संस्कृत दिवस का आयोजन किया। इस कार्य-क्रम के अन्तर्गत संस्कृत सभा की अध्यक्षता डा० डी. एन. शास्त्री ने की। सभा में मुख्य अतिथि श्री विश्वबन्धु जी शास्त्री के अतिरिक्त आचार्य श्री रामप्रसाद जी वेदालंकार (प्राध्यापक वेद विभाग), प्रो० मनुदेव 'बन्धु' तथा अनेक छात्रों ने भी भाषण दिये। अन्त में कुलपति जी ने श्री सुरेन्द्रकुमार, श्री बसन्तकुमार (एम. ए. द्वितीय वर्ष) तथा श्री सत्यदेव (एम. ए. प्रथम वर्ष) को क्रमशः प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान प्राप्त करने पर उपहार प्रदान किए तथा संस्कृत में ही अपना भाषण दिया। कुलपति जी ने अपने भाषण में संस्कृत के विकास पर काफी बल दिया।

स्वतन्त्रता दिवस

इस वर्ष स्वतन्त्रता दिवस का पावन पर्व समस्त छात्रों, अध्यापकों व अधिकारियों ने विद्यालय विभाग के प्रांगण में मनाया। मुख्य अतिथि श्री वीरेन्द्र जी (कुलाधिपति, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय) के कर कमलों द्वारा राष्ट्रीय ध्वजारोहण किया गया। ध्वजारोहण के पश्चात् विद्यालय विभाग के छात्रों ने अनेक प्रकार के खेलों का प्रदर्शन किया। इस अवसर पर माननीय कुलाधिपति जी ने उन छात्रों को पारि-तोषिक प्रदान किए, जिन्होंने क्रीड़ा में प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान प्राप्त किए थे। तत्पश्चात् मेजर श्री वीरेन्द्र अरोड़ा (प्राध्यापक, गणित विभाग) के नेतृत्व में एन. सी. सी. के छात्रों द्वारा भव्य परेड का प्रदर्शन किया गया। परेड का संयोजन कप्तान श्री राजेन्द्र जोशी ने किया। अन्त में माननीय कुलाधिपति, कुलपति तथा आचार्य एवं प्रो-वाईसचांसलर जी ने स्वतन्त्रता दिवस पर भाषण दिए।

★★★